ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-8* November-2020
Anthology : The Research

पवित्र गीता
Holy Geeta

Paper Submission: 05/11/2020, Date of Acceptance: 25/11/2020, Date of Publication: 26/11/2020

नसीम फातिमा
पूर्व प्रवक्ता,
दर्शन शास्त्र विभाग,
हनमंतु महाविद्यालय लाहुरपुर,
हनमानु गंज, इलाहाबाद, उतर प्रदेश, भारत

सारांश

भगवदगीता श्री कृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। जिसमें मानव कल्याण हेतु निस्काम कर्म करने को कहा गया है, गीता ब्रह्म के दोनो रूपों को मानती है सगुण तथा निर्गुण। इसके अनुसार कर्मो की प्रधानता दी गयी है कि हम कर्म करते हुये सत्य को प्राप्त करें ऐसा कर्म जिसमें कोई इच्छा, आसक्ति, फलांकाक्षा न हो, निस्वार्थ भाव से कर्म करें, जिससे हम सांसारिक बन्धन में न फंसे बल्कि मोक्ष को प्राप्त करे, यदि हम सांसारिक बन्धन में ही फसे रहे तो हम कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं होगा और हम जीवन–मरण के चक्र में अनेको बार जन्म लेगे। हमारा जीवन लोक–कल्याण के लिये है जिसको हम निस्वार्थ, निस्काम कर्म करके ही पा सकते हैं।

The Bhagavad Gita is a sermon given by Sri Krishna to Arjuna in Kurukshetra. In which, for the welfare of human beings, it has been said to do Nisakam Karma, Gita considers both the forms of Brahma, Saguna and Nirguna. According to this, the primacy of karma has been given that we can achieve the truth by doing deeds, which do not have any desire, attachment, phalanksha, do selflessly, so that we do not get caught in worldly bondage but attain salvation if we If you are stuck in worldly bondage, then we will never get salvation and we will be born many times in the cycle of life and death. Our life is for public welfare, which we can achieve by doing selfless, nisakam deeds.

मुख्य शब्द: वेदांत कल्पवृक्ष एश्रुति एअविनाशी एसनातनए शाश्वत।
Shruti Ved Prophet, Quran Pakay Tourettee Gospel%

प्रस्तावना

भगवदगीता श्री कृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। यह वेदान्त दर्शन का सार है और अत्यंत समादरणीय ग्रन्थ है, यह गोपाल नंदन श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को बछड़ा बना कर उपनिषद रूपी गायों से दुहा गया अमृत–मय दूध है जिसे सुधीजन पीते है।

सर्वोषनिषदों गांवो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीभोक्ता दुग्ध गीतामृंत महत।।

यह महाभारत के भीष्म पर्व के अन्तर्गत है। इसकी तुलना कामधेनू और कल्पवृक्ष से की गयी है। कुरूक्षेत्र के युद्ध में एक ओर पाण्डव सेना और दूसरी ओर कौरव सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध खड़ी है , श्री कृष्ण जी अर्जुन के सारथी है रथ को दोनो सेनाओं के बीच ले जा खड़ा करते हैं।

अर्जुन को समझाते हैं कि क्षत्रिय राजपूत और धर्म रक्षक होने के नाते उसका कर्तव्य है कि वह अधर्म और अशुभ से लडे और धर्म को विजयी बनायें। तुम्हें अपने स्वभाव और स्वधर्म का पालन करना चाहिये। यहां पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि गीता का यह उपदेश सम्पूर्ण होने पर श्रीकृष्ण ने केवल यहीं कहा कि–

यथेच्छहस्तधाक्ष्र कुरू'

जैसी तुम्हारी इच्छा हो वही करो और अर्जुन ने उत्तर दिया–

'करिष्णये बचनं तव'

आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया अतः जैसा आप कहे वैसा ही करूंगा।

गीता का प्रमुख दार्शनिक भाव है कि–

नासतो विद्यते भावों नाभावों विद्यते सतः

जो असत् है उसका भाव नहीं हो सकता और जो सत है उसका अभाव नहीं हो सकता। सत् वही है जो त्रिकाला बाध हो अर्थात जो भूत,

वर्तमान, भविष्य तीनो कालो में सर्वदा नित्य, एकरस और अपरिवर्तनशील रहे यह लक्षण शुद्ध आत्म तत्व या ब्रम्ह का है और वहीं सत् है।

गीता में आत्म तत्व के लिये नित्य अविनाशी, अज, अव्यय, सर्वगत, अचल, सनातन, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविकार्य आदि पद प्रयुक्त हुये है।

गीता–18–63

शरीर नश्वर है आत्मा नित्य है, अतः वह शरीर के साथ नष्ट नहीं होता जिस प्रकार कोई व्यक्ति पुराने जीर्ण वस्त्रो को उतार कर दूसरे नये वस्त्रों को पहन लेता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़ कर नये शरीर को धारण करती है गीता ब्रहम्मा के सगुन और निर्गुण दोनो रूपों को मानती है और यह भी मानती है कि ये दोनो रूप एक ही अभिन्न तत्व के है। ब्रहम जगत की उत्पत्ति आनन्द है।

गीता परमेश्वर की दो प्राकृतियों का वर्णन करती है। अपरा और परा ।

अपरा

प्रकृति को क्षेत्र और क्षर पुरूष भी कहा गया है। यह जड़ प्रकृति है जिसके भीतर समस्त भौतिक पदार्थ विद्यमान है।

परा

परा प्रकृति में चेतन जीव आते हैं इसकी अन्य संज्ञा क्षेत्रज्ञ और अक्षर पुरूष भी है। चैतन्य रूप होने से जीव ईश्वर की उत्कृष्ट या परा प्राकृति या विभूति है। जीव कूटस्थ और अक्षर है, जीव ईश्वर का सनातन अंश है। क्षर पुरूष (जड़ प्रकृति) और अक्षर पुरूष (जीव) इन दोनो के ऊपर उत्तम पुरूष या पुरूषोत्तम है या पुरूषोत्म ही परम तत्व है।

18–73 गीता 2–16

यह जड़ प्रकृति और चेतन जीव दोनो को आत्मा है और दोनो में अन्तर्यामी रह कर दोनो का नियमन कर रहा है। किन्तु यह दोनो के ऊपर भी यह विश्वातीत पुरूषोत्तम है।

इस प्रकार गीता में निर्गुण ब्रम्ह और सगुण ब्रम्ह का अत्यन्त सुन्दर समन्वय हुआ है, गीता में ज्ञान, कर्म, उपासना का विलक्षणण समन्वय हुआ है इसमें ध्यानमार्ग साधना का मार्ग है, जो ज्ञान, कर्म भक्ति तीनों में उपादेय है।

ध्यान

मानसी क्रिया होने से कर्म सम्बद्ध है।

उपासना

भगवान का ध्यान या स्मृति होने से भक्ति से सम्बद्ध है।

चित्त

चित्त की एकाग्रता द्वारा वृत्तियों के समाधि में विलीन होने पर निर्विकल्प ज्ञान का प्रकाशित होना ध्यान का लक्ष्य है। गीता में योग शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और योग में ध्यान, ज्ञान, कर्म, और भक्ति का समन्वय है।

योग

योग का शाब्दिक अर्थ 'मिलन' है अर्थात जीवात्मा का परमात्मा से मिलन इतना प्रगाढ़ मिलन कि दोनो दो न रहें अपितु एक हो जायें।

योग धारण–ध्यान समाधि है। योग स्थित प्रज्ञ की द्वन्द्वातीत ब्रहमी स्थिति है। योग निस्काम कर्म है, कर्म कौशल अर्थात कामना रहित कर्म है। जैसे–वायु रहित स्थान पर दीपक की लौ स्थिर रहती है, वैसे ही योगी का चित्त स्थिर रहता है, योग में योगी तत्वज्ञान से विचलित नहीं होता एवं अर्न्तेन्द्रिय तथा शुद्ध ज्ञानगम्य अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है।

देहधारी प्राणी के लिये कर्मो का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है। प्रकृति के सत्व रजस्तमोगुण सब प्राणियों को विवश करके कर्म कराते है यह सारा लोक कर्म से बंधा है।

गीता ने कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति का अदभुत समन्वय किया है, गीता कर्म का निषेध नहीं करती कर्म में फलाशक्ति या कामना का निषेध करती है। वासना, कामना, आशक्ति या फलाकाक्षा कर्म का विषदन्त है जो कर्ता को बंधन में बांधता है, इस विष–दन्त को निकाल देने पर कर्म में बांधने की शक्ति नहीं रह जाती।

गीता का कर्मयोग कर्म–निषेध नहीं अपितु कामना रहित है। सन्यास का अर्थ कर्म का त्याग नहीं है अपितु कामना का त्याग है, त्याग का अर्थ कर्म का त्याग नहीं अपितु फल का त्याग है।

गीता की यह सुप्रसिद्ध उक्ति है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सड़गेडस्त्कर्मणि।।

अर्थात –

तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म–फल में तुम्हारा कोई अधिकार नही। अतः तुम कर्म–फल की कामना या फलासक्ति मत करो। न ही तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म न करने में हो ।

सुविख्यात दार्शनिक – रैशल्ड का मत है कि–

हमें गाड़ी आगे और घोड़ा पीछे जैसी युक्ति (Paradox) का प्रयोग नहीं करना चाहिये। हमें मात्र इतना ही मालुम है कि कर्म का फल अवश्य ही मिलेगा, पर यह नहीं पता कि कब, कहां और कैसे मिलेगा।

गीता–2–47

इसलिये फल की प्रतीक्षा में कर्महीन हो कर नहीं बैठना चाहिये अपितु लगातार सद्कर्म करते ही रहना चाहिये।

गीता में निस्काम कर्म पर ही बल दिया गया है, गीता का निस्काम कर्म ज्ञान और भक्ति दोनो से अनुप्रमाणित है। प्रारम्भ में यदि कर्म के लिये कामना आवश्यक ही है तो समस्त लौकिक कामनाओं का त्याग करके साधको को केवल आध्यात्मिक उन्नति की कामना से कार्य करने चाहिये। भगवतप्राप्ति के लिये भगवद दर्पण बुद्धि से कर्म करने से आध्यात्मिक उन्नति होती है और कर्मो द्वारा बन्धन नहीं होता। यह सत्य है कि पूर्णतया निस्काम कर्म तो जीवन मुक्ति सिद्ध पुरूष के लिये ही सम्भव है सिद्ध पुरूषो का कोई स्वार्थ नहीं होता उनके कार्य लोक संग्रह के लिये, लोक कल्याण के लिये होते है ब्रम्ह ज्ञान के बाद कोई ज्ञातव्य शेष नहीं रहता। सिद्ध पुरूष के लिये कोई कर्तव्य नहीं है उसका कोई कार्य शेष

नहीं है। इसका अर्थ है कि उसका कोई स्वार्थ नहीं है उसके कार्य लोक कल्याण के लिये होते हैं वह लोक कल्याण की कामना से कार्य नहीं करता अपितु उसके द्वारा सम्पादित कार्यो से स्वतः कहते है कि उनके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं है, फिर भी उनके द्वारा कर्म सम्पादन हो रहा है अन्यथा समस्त लोको का उच्छेद हो जाये। गीता का भक्तियोग ज्ञान और कर्म से अनुप्रमाणित है।

परा भक्ति पर ज्ञान और निस्काम कर्म वस्तुतः एक ही हैं।

इस प्रकार गीता ने इनका समन्वय करके साधना मार्ग को भी सरल, सुबोध और सुगम बना दिया। लौकिक ज्ञान बुद्धि विकल्प जन्य है और ज्ञातृज्ञेय दूत पर टिका है। परज्ञान अद्धैत निर्विकल्प अनुभूति है भक्ति का सामान्य अर्थ भगवान का भजन– सेवा धर्म स्मरण है, इसमें भक्ति और भगवान एकाकार हो जाते है। लौकिक कर्म में कामना बनी रहती है और यह कत द्धैत पर टिका है। निष्काम कर्म कामनारहित और कतत्वाभिमान शून्य होने से जीवन मुक्ति की अद्धैत स्थिति का द्योतक है।

भक्त भगवत कृपा और भगवद बचनों से आश्वस्त रहता है। भगवान की अनन्य शरण में जाने पर भगवान ही उसका ध्यान रखते है। गीता में भगवान ने बारम्बार इस प्रकार आश्वासन दिया है–

न में भक्तः प्रणश्यति

मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता है कल्याण कर्म करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। यदि कोई अत्यन्त दुराचारी भी निश्छल रूप से मेरा भजन करने लगे तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। इस अनित्य और सुखरहित लोक में मेरा भजन करना चाहिये।

गीता–2–7
गीता–10–64–6
गीता– 9–34

इसलिये–मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः

अर्थात– हे अर्जुन। मुझमें ही निरन्तर मन लगा, मेरा भजन कर मुझे अर्पण करके कर्मो द्वारा भजन कर, मुझे ही प्रणाम कर, तू मेरी अननय शरण में आ जा और अपनी आत्मा को मुझमें प्रतिष्ठित कर दें, तू मुझे ही प्राप्त होगा। मैं अपने चार प्रकार के भक्तों में अर्थात

1. अर्थार्थी
2. आर्त
3. जिज्ञासु
4. ज्ञानी

इन चारो में से सबसे अधिक ज्ञानी सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि उसकी मुझसे अनन्य भक्ति है, अतः मैं उसे अत्यन्त प्रिय हूँ और वह मुझे अत्यन्त प्रिय।

यहां पर इस पवित्र ग्रन्थ का वर्णन करने का तात्पर्य हमारा यह है कि जिस पवित्र उददेश्य के लिये हमें यह मानव जीवन प्राप्त हुआ है हम उसे किस प्रकार स्वार्थ अहंकार, विश्वासघात, झूठें आवरण में नष्ट कर रहे? क्या हमें क्षण भर का भी समय नहीं कि हम ईश्वर द्वारा बताये गये पवित्र श्रुतियों पवित्र उददेश्यों को पूरा करने का प्रयास करें? क्या हम अपने झूठें आवरण से संसार के मोह में अपने कर्तव्यों से कर्तव्यमुक्त हो गये है?

तो यह कहना उचित नहीं होगा क्योंकि स्वयं गीता में भी यह कहा गया है कि– न ही तुम्हारी प्रवृत्ति कर्म न करने में है।

अर्थात– हमें कर्म तो करना ही है परन्तु निस्वार्थ भावना से, झूठें आडम्बरो से रहित होकर, निस्काम कर्म करना ही हमारा उददे्श्य है जिसमें न सिर्फ हमें अपितु सम्पूर्ण ब्रहमाण्ड को एक रस में रम दिया जाये।

अध्ययन का उद्देश्य

गीता में निस्काम कर्म करने को बड़ी ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यदि इसके अनुसार हम कर्म करे तो जीवन में हमें कभी भी किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा क्योंकि हमें कष्ट तभी होता है जब हम किसी से कोई इच्छा या कामना करते हैं और वह पूरा न होने पर हम दुखी होते जो कि मूल कारण है। हमें निस्काम कर्म करना चाहिये यह मेरा भी विश्वास है।

निष्कर्ष

भागवत् गीता श्री कृष्ण द्वारा कुरूक्षेत्र में अर्जुन को दिया गया उपदेश है। जिसमें मानव कल्याण हेतु, निस्काम कर्म करने को कहा गया है तथा यह ब्रह्म के दोनो रूपो सगुण तथा निर्गुण को मानती है। गीता ने कर्मयोग में प्रवृत्ति और निवृत्ति का अदभुत समन्वय किया है। गीता कर्म का निषेध नहीं करती अपितु कर्म में फलाशक्ति या कामना का निषेध करती है। कामना, वासना, अशक्ति या फलाकांक्षा कर्म का विषदन्त है जो कर्ता को बन्धन में बांधता है। इसलिये कहा गया है कि– ''हमारा अधिकार केवल कर्म करने में है, कर्म–फल में कोई अधिकार नहीं''।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गीता– राधा कृष्ण*
2. *गीता रहस्य– बाल गंगाधर तिलक*
3. *श्री गीता– श्री हरि कृष्ण गोयन्दका*
4. *गीता तत्व– श्री सारदानन्द आदि*
5. *गीता का व्यवहार दर्शन– गोवर्धन दास जी*
6. *ज्ञान योग– स्वामी विवेकानन्द*
7. *श्रीमदभागवत– महापुरान।*